अपना निर्माण अपने से

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

व्यक्ति अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है। दूसरा व्यक्ति सहयोगी बन सकता है, सुविधा दे सकता है किन्तु अपना निर्माण अपने को ही करना पड़ता है। व्यक्ति का कार्य और उद्देश्य अच्छा होना चाहिए। ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। चरैवेति–चरैवेति की पद्धति अपनानी चाहिए। यदि आदमी स्वयं अपनी राह खोजता है तो उस पर चलने वाले लाखों लोग हो जाते हैं। स्वयं पुरुषार्थी और कर्मयोगी बनकर कड़ी मेहनत करनी चाहिए। निर्माण अर्थात् विकास स्वयं का ही होता है। बाह्य विकास भौतिक विकास है और आन्तरिक विकास आध्यात्मिक विकास है। दोनों विकास आवश्यक हैं। बाह्य विकास के द्वारा बाहरी उन्नति होती है। बाह्य विकास के लिए अनेक उपादानों की आवश्यकता होती है। मानव शक्ति, उद्देश्य की पवित्रता, तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता और बाह्य सहयोग बाह्य विकास के लिए आवश्यक होते हैं।

दूसरों की भावना को भी आदर देना चाहिए। बाह्य विकास के लिए व्यावहारिक ज्ञान होना आवश्यक है। अधिकारियों को प्रशिक्षण इसलिए दिया जाता है क्योंकि उनका संबंध लोकजीवन से जुड़ा रहता है। लोगों की भावना सरकार तक और सरकार की योजनाओं को लोगों तक पहुंचाना लोकसेवकों का कार्य है। सरकार की योजनाओं का प्रचार–प्रसार और जनता के बीच में ले जाने की योग्यता सरकारी अधिकारियों में होनी चाहिए। विकास की योजनाओं का ज्ञान भी होनी चाहिए तभी निर्णय सही हो सकता है। किसी कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है और टीमस्प्रिट से कार्य करने की भावना होनी चाहिए। व्यक्तित्व विकास के लिए आत्मनिरक्षण और परिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रेम, भाईचारा, सहनशीलता, प्रमोद, करुणा की भावना होनी चाहिए। मानवीय गुण भीतरी जगत से संबंधित है। इसलिए भीतर भी देखना पड़ता है। भीतर का जगत सूक्ष्म जगत है। वहां अमूर्तता है। अमूर्त ही स्थूल

का संचालन करता है। अणु के टूटने से कितनी शक्ति प्राप्त होती है इसका अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। लघु में विराट समाया रहता है। जगत नियंता व्यवस्थित शक्ति है। व्यक्ति का बहुत बड़ा योगदान सृष्टि को संचालित और सुव्यवस्थित करने में होता है। आंतरिक शक्ति बहुत ही प्रभावशाली होती है। हमारे देश के ऋषियों मुनियों ने आन्तरिक शक्तियों का जागरण कर विश्व के रहस्य को जान लिया। विश्वामित्र वशिष्ठ आदि ऋषियों ने आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके शक्ति अर्जित की थी। साधना में बहुत अधिक शक्ति निहित है। साधना के द्वारा स्वनिर्माण होता है। लक्ष्य निर्धारण मनुष्य को स्वयं करना पड़ता है। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए स्वयं प्रयास करना पड़ता है। बाह्य साधन केवल सहायता करते है। निर्माण के लिए प्रयास करना चाहिए। जीवन निर्माण के अनेक क्षेत्र हैं। सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, चिकित्सा के क्षेत्र हैं। जिसकी रुचि जिसमें होती है वह उस क्षेत्र में विकास करता है। सेवा के द्वारा भी आत्मकल्याण और आत्मनिर्माण किया जाता है। सेवाभाव में गुरु की कृपा आवश्यक होती है।

सेवा एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा अहंकार नष्ट हो जाता है। सेवा तीन प्रकार से की जा सकती है– तन, मन और धन से। तन की सेवा शारीरिक परिश्रम के द्वारा की जा सकती है। मन की सेवा समाज को चिन्तन, मनन, नये विचार और मार्ग दर्शन के द्वारा की जा सकती है। धन से समाज के उन वर्गों के उत्थान के लिए जो धन से हीन है या जिनके पास पढ़ने–लिखने के साधन नहीं है उनको आर्थिक सहायता देकर सेवा की जा सकती है। सेवाधर्म बहुत की गूढ़ है। अतः सेवा करने वाले व्यक्ति को नम्रता पूर्वक चाहे व जिस क्षेत्र में हो सेवा का योगदान देना चाहिए। मानव जीवन मे चार तरह के ऋण हैं– गुरु ऋण, देव ऋण, पितृ ऋण, और समाज ऋण। योगी लोग भी इसके महत्व को नहीं समझ सके। सेवा एक शाश्वतिक धर्म है। सेवा भेद को समाप्त कर देती है। ऊँच–नीच, बड़ा–छोटा का भेद सेवाभाव में नहीं रहता। सेवा एक आंतरिक गुण है। सेवा अहंकार को भी समाप्त कर देती है। शिष्य के प्रति गुरु का भाव और गुरु के प्रति शिष्य का भाव कैसे होना चाहिए, यह सेवा के द्वारा ही प्रकट होता है। शिष्य को चाहिए कि वह गुरू की तरफ पैर करके न बैठे। ऊँचे स्वर में गुरु से बात न करे। गुरु के इंगित को समझकर उसके आदेश को मानने के लिए सदैव

तत्पर रहे। गुरु के समक्ष सदैव विनम्रता का भाव प्रकट करे। नम्र वाणी में व्यवहार करे, जिससे गुरु की कृपा शिष्य पर बनी रहे। प्राचीनकाल में भारत में गुरुकुल परम्परा थी। शिष्य गुरु के आश्रम में जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे। शिष्य सेवा करते थे। गुरु उनको विद्यादान देते थे। जिससे शिष्य के भविष्य का निर्माण होता था। गुरु शिष्य को परा और अपरा विद्याओं का ज्ञान प्रदान करते थे। परा–विद्या अध्यात्मक विद्या है और अपरा विद्या भौतिकता का ज्ञान कराने वाली विद्या है। इन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य का ज्ञाननेत्र उद्घाटित हो जाता था और वह सदाचार शिष्टाचार का जीवन जीता था। व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। अतः अगर व्यक्ति सुधर जाये तो समाज का सुधार हो सकता है। समाज का सुधार हो जाये तो राष्ट्र अपने आप सुधर जायेगा। मानव परिश्रम करके अपने भाग्य का निर्माण कर लेता है। कठिन परिश्रम, पक्का इरादा और दूरदृष्टि निर्माण के लिए आवश्यक होते हैं।